ंघ पुस्तकमालाका दूसरा पुष्प

तत्त्वार्थसूत्र

(सार्थ)

सम्पादक

पं० लालबहादुर शास्त्री

प्रकाशक

भारतवर्षीय दि. जैन संघ

प्रथमावृत्ति] वी. नि. सं. २४७४ [मूल्य ॥-)

त जैन ग्रन्थ है। हिन्दुओंमें
[सलमानोंमें कुरानका जो
। बहुत से स्त्री पुरुष प्रति-
[नते हैं। वे श्रद्धावश पाठ
नेसे उसका आशय कतई
रण प्रकाशित हुए हैं उनमें
गर्थ दिया है। पाठ करने
मत: हमने इस संस्करणमें
केवल शब्दार्थ दिया है। जो संघ के ख्यात वक्ता और सुलेखक विद्वान
पं० लालबहादुरजी ने किया है उससे पाठ करने वालों को पाठ के साथ
ही साथ उसका भावज्ञान भी होता जायेगा। पाठशालाओ के लिये भी
यह संस्करण उपयोगी साबित होगा। ऐसी हमे आशा है।

प्रकाशक

श्रीउमास्वामि विरचित

तत्त्वार्थसूत्र

(सार्थ)

अध्याय १

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

अर्थ—मैं (उमास्वामी) मोक्षमार्ग के उपदेशक, कर्मपर्वतों का भेदन करनेवाले तथा विश्व के संपूर्ण तत्त्वों के जाननेवाले भगवान को उनके इन गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र इन तीनों का सहयोग मोक्ष का मार्ग है।

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्व (स्वरूप) सहित अर्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ।

वह सम्यग्दर्शन स्वभाव से और पर के उपदेश से उत्पन्न होता है।

जीवाजीवाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥

जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

इन सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवादिक का व्यवहार नाम, स्थापना द्रव्य तथा भाव से होता है।

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

प्रमाण और नय से इन सम्यग्दर्शनादिक और जीवादिक का ज्ञान होता है।

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥ ७ ॥

नाम, स्वामी, उत्पत्ति का कारण, रहने का स्थान, टिकने की मर्यादा और भेद प्रभेद इनसे भी उन पदार्थों का ज्ञान होता है।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

विभिन्न स्थानों मे अस्तित्व की खोज, तादाद का कथन, वर्तमान कालीन स्थान, त्रिकाल विषयक स्थान, रहने की मर्यादा, अन्तर, स्वभाव और उनकी अपेक्षा कम और ज्यादापना, ये बातें भी सम्यग्दर्शनादिक और जीवादिकों के समझने मे सहायक होती हैं।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पांच ज्ञान हैं।

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

ये ज्ञान ही प्रमाण हैं। प्रमाण के दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

पहले के दो ज्ञान परोक्षप्रमाण हैं।

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

पिछले तीन ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण हैं।

मतिःस्मृतिःसंज्ञाचिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३ ॥

मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान ये मतिज्ञान के ही दूसरे नाम हैं।

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

मतिज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है।

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के भेद है।

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

बहुत, बहुत प्रकार, शीघ्र, अस्पष्ट, बिना कहा, यथार्थ, तथा इनके उल्टे अर्थात् एक, एक प्रकार, विलंब, स्पष्ट, कहा हुआ और अयथार्थ इन बारह प्रकार के पदार्थों को मतिज्ञान जानता है।

अर्थस्य ॥ १७ ॥

ये बहु, बहुविध आदि विशेषताए पदार्थमे होती हैं। अर्थात् ये पदार्थ के विशेषण हैं।

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

अव्यक्त पदार्थ का केवल अवग्रह मतिज्ञान ही होता है।

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

यह अव्यक्त पदार्थ का अवग्रह मतिज्ञान चक्षुइन्द्रिय और मन से नहीं होता।

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥ २० ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। उसके दो भेद हैं—अंगबाह्य और अंग प्रविष्ट। अंगबाह्य के अनेक भेद हैं और अंग प्रविष्ट के बारह भेद हैं।

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

भव की मुख्यता से होनेवाला अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥

क्षयोपशम की मुख्यता से होनेवाले अवधिज्ञान के छः भेद हैं और वह मनुष्य और तिर्यञ्चों के होता है।

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

ऋजुमती और विपुलमती ये दो मनः पर्यय ज्ञान के भेद हैं।

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

ऋजुमती से विपुलमति निर्मल है, और विपुलमती केवलज्ञान से पहले नहीं छूटता जब कि ऋजुमति छूट जाता है।

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययोः ॥ २५ ॥

अवधि ज्ञान से मनःपर्ययज्ञान विशुद्ध है, उसका क्षेत्र थोड़ा है, वह होता भी केवल संयमी पुरुषों के ही है तथा उसका विषय भी सूक्ष्म है।

मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सभी द्रव्यों को उनकी कुछ पर्यायों के साथ जानते हैं।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अवधिज्ञान केवल रूपी पदार्थों को ही जानता है।

तदनंतभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

मनःपर्यय ज्ञान अवधिज्ञान के विषय के अनंतवे भाग तक को जानता है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

केवलज्ञान सभी द्रव्यों और उनकी सभी पर्यायों को जानता है।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥

एक जीव मे एक साथ चार ज्ञानतक हो सकते है।

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान मिथ्या भी होते हैं।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

क्योंकि वे 'वस्तु है या नहीं' इसका विचार किये बिना पागल की तरह कुछ का कुछ जान लेते हैं।

नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एव-भूत ये सात नय हैं।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

—o—

अध्याय २

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणामिकौ च ॥ १ ॥

औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये पाँच जीव के स्वभाव हैं।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥

इनके क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं।

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

औपशमिकभाव के औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो भेद हैं।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

क्षायिकभाव के क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ भेद हैं।

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

क्षायोपशमिक भाव के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, विभङ्गज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमा-संयम ये अठारह भेद हैं।

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकै-कैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

औदयिकभाव के—देवगति, मनुष्यगति, तिर्यग्गति, नरकगति, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और छः लेश्याएँ ये इक्कीस भेद हैं।

जीवभव्याऽभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

पारिणामिक भाव के जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन भेद हैं तथा 'च' शब्द से अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अन्य भेद भी समझना चाहिए।

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

जीव का लक्षण उपयोग है।

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

उस उपयोग के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ये दो भेद हैं। ज्ञानोपयोग के आठ और दर्शनोपयोग के चार भेद हैं।

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

जीव संसारी और मुक्त के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥

मन के होने और न होने से संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—मन सहित और मन रहित।

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥

संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर हैं।

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

जिन जीवों के दो तीन आदि इन्द्रियाँ होती हैं वे त्रस होते हैं।

पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

इन्द्रियाँ पाँच होती हैं।

द्विविधानि ॥ १६ ॥

पाँचों ही इन्द्रियाँ द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की है।

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

इन्द्रियों के अंतरग वहिरंग आकार की रचना निर्वृत्ति और उसकी रक्षा के साधन उपकरण ये द्रव्येन्द्रियाँ कहलाती हैं।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

अर्थग्रहण की शक्ति लब्धि और अर्थग्रहण के व्यापार उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥

स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु और कान ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

छूना, चखना, सूंघना, रंग देखना और शब्द सुनना उनका काम है।

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

मन का विषय श्रुतज्ञान है।

वनस्पत्यंतानामेकं ॥ २२ ॥

पाँचों स्थावर जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥

लट, चीटीं, भौंरा और मनुष्य इनके एक एक अधिक इन्द्रिय होती है।

संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

मन सहित जीवों को संज्ञी कहते हैं।

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

मरने के बाद नया शरीर धारण करने के लिए जीव के गमन करने को विग्रहगति कहते हैं। विग्रह गति मे जीव के कार्माण काययोग रहता है।

अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥

जीव और पुद्गलों की गति आकाश प्रदेशों की पंक्ति के अनुसार होती है।

अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

मुक्तजीव की गति सीधी होती है।

विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ।

संसारी जीव को सीधी गति भी होती है और मोड़ेवाली भी होती है। मोड़ेवाली गति अधिक से अधिक तीन समय तक होती है।

एक समयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

सीधी गति एक समय में ही होती है।

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥ ३० ॥

विग्रह गति में जीव एक, दो, या तीन समय तक चूँकि शरीर और पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलो को ग्रहण नहीं करता अतः अनाहारक रहता है।

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाजन्म ॥ ३१ ॥

सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद इस तरह तीन प्रकार का जन्म है।

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त, शीत उष्ण शीतोष्ण, संवृत विवृत और संवृतविवृत ये उन जन्मों की नौ योनियाँ हैं।

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥

जरायु से पैदा होनेवाले, अण्डे से पैदा होनेवाले और विना जरायु या अण्डे के पैदा होनेवाले जीवों के गर्भ जन्म होता है।

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देव और नारकी जीवो के उपपाद जन्म होता है।

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

शेष जीवों के सम्मूछन जन्म होता है।

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच शरीर हैं।

परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३६ ॥

ये पाँचों शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं।

प्रदेशतोऽसंख्येयगुण प्राक् तैजसात् ॥ ३८ ॥

किन्तु प्रदेशों की अपेक्षा तैजस से पहले के शरीर एक दूसरे से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे हैं। अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक असंख्यात-गुणे प्रदेशवाला है और वैक्रियिक से आहारक असंख्यातगुणे प्रदेशवाला है।

अनंतगुणे परे ॥ ३९ ॥

तथा आहारक से तैजस और तैजस से कार्माण अनंत गुणे प्रदेश वाले हैं।

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

तैजस और कार्माण शरीर न किसी से रुकते हैं न किसी को रोकते हैं।

अनादिसंबंधे च ॥ ४१ ॥

तथा उन दोनों का जीव के साथ अनादि काल से सबंध है।

सर्वस्य ॥ ४२ ॥

सभी संसारी जीवों के ये दोनों शरीर होते हैं।

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥

एक जीव के एक साथ तैजस कार्माण को आदि लेकर चार शरीर तक हो सकते हैं।

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ ४४ ॥

अन्त का कार्माण शरीर उपभोग रहित है।

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥

औदारिक शरीर गर्भ और सम्मूर्छन जन्म वालों के होता है।

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥

वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्मवालों के होता है।

लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

तपश्चरण विशेष से भी वैक्रियिक शरीर हो जाता है।

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

तैजस शरीर भी तपश्चरण विशेष से हो जाता है।

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित है तथा प्रमत्त संयमी मुनि के ही होता है।

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक होते है।

न देवाः ॥ ५१ ॥

देव नपुंसक नहीं होते।

शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५१ ॥

मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों ही लिङ्गवाले होते हैं।

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५२ ॥

देव, नारकी, उत्तम देहवाले चरम शरीरी और भोगभूमि के जीवों का अकाल मरण नहीं होता।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

—०—

अध्याय ३

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बु वाता-काशप्रतिष्ठाः सप्ताधोधः ॥ १ ॥

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमः प्रभा महातमप्रभा ये सात नरकभूमियां हैं। ये सातो ही भूमियां घनोदधि वातवलय घनवातवलय तनुवातवलय और आकाश के आधार हैं तथा एक दूसरे के नीचे हैं।

तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

उन भूमियों में क्रम से ३० लाख, २५ लाख, १५ लाख, १० लाख, ३ लाख ५ कम एक लाख और ५ नरक (बिल) हैं।

नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

नारकी जीवों की लेश्याएँ, उनके क्षेत्र का रूपरसादिक, उनका शरीर, उनकी पीड़ाएँ और उनकी विक्रिया सब नीचे नीचे अधिक अशुभ होते हैं।

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

नारकी जीव परस्पर में एक दूसरे को दुःख देते हैं।

संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

तीसरे नरक तक संक्लिष्ट परिणामवाले असुरकुमार जाति के देव भी उन्हें दुःख देते हैं।

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत् सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

इन सातों नरकों में क्रम से १ सागर, ३ सागर, ७ सागर १० सागर १७ सागर, २२ सागर और ३३ सागर की आयु है।

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

मध्यलोक में जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र आदि शुभनामवाले असंख्यातद्वीप और समुद्र है।

द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

इन द्वीप और समुद्रों का विस्तार उत्तरोत्तर दूना है और ये सब अपने से पहले के द्वीप समुद्रों को घेरे हुए चूड़ी के आकार गोल हैं।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जम्बूद्वीपः ॥९॥

इन द्वीप समुद्रों के ठीक बीच मे एक लाख योजन का गोल जम्बूद्वीप है और उसके बीच में सुमेरु पर्वत है।

भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक् हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

इन सातों क्षेत्रों का विभाग करनेवाले हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छः पर्वत हैं।

हेमार्जुन-तपनीय वैडूर्य रजत-हेममयाः ॥ १२ ॥

इन छहों पर्वतों का रंग क्रम से सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना मोरकण्ठ, चाँदी और और सोने जैसा है।

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

उन पर्वतों के दोनों पसवाडो में विचित्र प्रकार की मणियाँ हैं और सभी पर्वत ऊपर नीचे और बीच में एक से विस्तारवाले हैं।

पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केसरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका ह्रदास्तेषा-मुपरि ॥ १४ ॥

उन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिछ, केसरी, महा-पुण्डरीक, पुण्डरीक नाम के छः तालाब हैं।

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्धविष्कंभो ह्रदः ॥ १५ ॥

पहला तालाब एक हजार योजन लंबा और पाँच सौ योजन चौड़ा है।

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

तथा दश योजन गहरा है।

तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥

उस तालाब के बीच मे एक योजन का कमल के आकार-वाला टापू है।

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

उस तालाब और कमल से आगे आगे के तालाब और कमलों का विस्तार वगैरह दूना दूना है।

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपम स्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥

उन कमलों मे क्रम से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छः देवियाँ सामानिक देवों के साथ रहता हैं। उनकी एक पल्य की आयु है।

गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदा नारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाःसरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

गंगा, सिधु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा ये चौदह नदियाँ उन सातो क्षेत्रों के बीच मे हाकर बहती हैं।

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

दो दो नदियो में से पहले २ की नदा पूर्व की ओर बहती है।

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

बाकी नदियाँ पश्चिम की ओर बहती हैं।

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

ये गंगा सिन्धु आदि नदियाँ चौदह चौदह हजार नदियो को लेकर बही हैं।

भरतःषड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

भरत क्षेत्र का विस्तार ५२६-६/१९ योजन है।

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

भरत क्षेत्र से आगे के पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार विदेह क्षेत्र तक दूना दूना है।

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ।। २६ ।।

उत्तर के क्षेत्र और पर्वत आदि के समान ही दक्षिण के क्षेत्र और पर्वत आदि का विस्तार है।

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।२७।।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के छः समयों द्वारा मनुष्य और तिर्यञ्चों की आयु काय आदि का बढ़ना और घटना होता है।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ।। २८ ।।

बाकी के क्षेत्रों मे यह परिवर्तन नहीं होता।

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ।।२९।।

हैमवत, हरि और देवकुरुक्षेत्र में क्रम से एक, दो और तीन पल्य की आयु होती है।

तथोत्तराः ।। ३० ।।

उत्तरकुरु, रम्यक और हैरण्यवत में भी इसी प्रकार क्रम से तीन, दो और एक पल्य की आयु होती है।

विदेहेषु संख्येयकालाः ।। ३१ ।।

विदेह क्षेत्रों में संख्यात वर्ष की आयु होती है।

भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ।। ३२ ।।

जम्बू द्वीप का १९० वां भाग भरत क्षेत्र का विस्तार है।

द्विर्धातकीखण्डे ।। ३३ ।।

धातकीखण्ड द्वीप में पर्वत, क्षेत्र, ह्रद, कमल आदि की संख्या जम्बूद्वीप से दूनी है।

पुष्करार्द्धे च ।। ३४ ।।

आधे पुष्कर द्वीप मे भी उक्त रचना जंबूद्वीप से दूनी है।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुष्कर द्वीप के बीच मे मानुषोत्तर पर्वत है, उससे पहले ही मनुष्य पाए जाते हैं, आगे मनुष्य नहीं पाये जाते।

आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

मनुष्य दो प्रकार के होते है, आर्य और म्लेच्छ।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर भरतक्षेत्र एरावतक्षेत्र और विदेहक्षेत्र कर्मभूमियां है। शेष भोगभूमियां हैं।

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अंत-मुहूर्त है।

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

तिर्यञ्चों की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और] जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।

—०—

अध्याय ४

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥

देव चार प्रकार के हैं।

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के कृष्ण, नील, कापोत और पीत लेश्या होती है।

दशाष्ट-पञ्च-द्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ ३ ॥

भवनवासी देवों के १०, व्यंतरों के ८, ज्योतिष्कों के ५ और कल्पवासियों के १२ भेद हैं।

इन्द्र-सामानिक त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषकाश्चैकशः ॥ ४ ॥

प्रत्येक प्रकार के देवों में इन्द्र, सामानिक (इन्द्र, के समान विभूतिवाले) त्रायस्त्रिश (पुरोहित) पारिषद् (सभासद) आत्मरक्ष (अंगरक्षक) लोकपाल (कोतवाल) अनीक (सेना) प्रकीर्णक (प्रजा) आभियोग्य (दास) किल्विषक (चांडाल) जातिके देव होते हैं।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥

व्यतर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते।

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

भवनवासी और व्यन्तरों मे दो दो इन्द्र होते हैं।

कायप्रवीचारा आऐशानात् ॥ ७ ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग मे शरीर से काम सेवन होता है।

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥

बाकी के स्वर्गों मे स्पर्श, रूप शब्द और मन से काम सेवन होता है।

परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥

१६ स्वर्गों के ऊपर काम सेवन नहीं होता।

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

भवनवासी देवो के असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार द्वीपकुमार और दिक्कुमार ये दस भेद हैं।

व्यतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

व्यतरों के किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस भूत और पिशाच ये आठ भेद है।

ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥

ज्योतिष्क देवों के सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और तारे ये पाँच भेद हैं।

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥

ज्योतिष्क देव मनुष्य लोक में सदा मेरु को प्रदक्षिणा दिया करते हैं।

तत्कृतः काल विभागः ॥ १४ ॥

उन ज्योतिष्क देवों के चलने के द्वारा ही दिन रात आदि काल का व्यवहार होता है।

बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

मनुष्य लोक से बाहर के सूर्य चाँद आदि स्थिर हैं।

वैमानिकाः ॥ १६ ॥

चौथी जाति के देव वैमानिक कहलाते हैं। आगे उनका वर्णन करते हैं।

कल्पोपपन्नाःकल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

वैमानिक देवों के कल्पोपपन्न और कल्पातीत ये दो भेद हैं।

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

ये कल्प (स्वर्ग) ऊपर ऊपर स्थित है।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयंत जयतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र शतार सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये सोलह स्वर्ग है। तथा इनसे ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान है।

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

ऊपर के देव नीचे के देवों से आयु, प्रभाव, सुख, कांति, लेश्या की विशुद्धि, इन्द्रिय ज्ञान और अवधि ज्ञान में अधिक अधिक होते हैं।

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

तथा गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान में कम कम होते हैं।

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में पीत लेश्या, सानत्कुमार और माहेन्द्र में पीत और पद्म, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ट में पद्म लेश्या,

शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार मे पद्म तथा शुक्ल लेश्या, आनत, प्राणत आरण और अच्युत स्वर्ग में तथा कल्पातीत विमानों में केवल शुक्ल लेश्या होती है।

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥

ग्रैवेयकों से पहले के विमानों को कल्प कहते हैं।

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका ॥ २४ ॥

ब्रह्म नामके पाचवें स्वर्ग के अन्त मे लौकान्तिक जाति के देव रहते हैं।

सारस्वतादित्यवन्ह्यरुणगर्दतोय तुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

ये लौकान्तिक देव आठ प्रकार के हैं–सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय तुषित, अव्याबाध, और अरिष्ट।

विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

बिजय आदि चार अनुत्तर विमानो के देव मनुष्य के दो भव लेकर मोक्ष चले जाते हैं।

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

देव नारकी और मनुष्यों को छोड़कर बाकी के सब ज ‍ तिर्यञ्च हैं।

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

भवनवासियो में असुरकुमारों को एक सागर, नाग कुमारों को तीन पल्य, सुपर्ण कुमारो की ढाई पल्य, द्वीप कुमारों की दो पल्य और बाकी के देवो की डेढ २ पल्य उत्कृष्ट स्थिति है।

सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥ २९ ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर मे कुछ अधिक १० सागर, लांतव कापिष्ट मे कुछ अधिक १४ सागर शुक्र महाशुक्र में कुछ अधिक १६ सागर, शतार सहस्रार में कुछ अधिक १८ सागर आनत प्राणत में २० सागर और आरण अच्युतमे २२ सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है।

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थ सिद्धौ च ॥ ३२ ॥

आरण अच्युत से ऊपर नौ ग्रैवेयकों में एक २ सागर बढ़ाकर अन्तिम ग्रैवेयक में ३१ सागर की, अनुदिश विमानों में ३२ सागर की तथा अनुत्तर विमानों मे ३३ सागर की उत्कृष्ट स्थिति है।

अपरापल्योपमधिकम् ॥ ३३ ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग मे जघन्य स्थिति पल्य से कुछ अधिक है।

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनंतरा ॥ ३४ ॥

ऊपर २ के स्वर्गों मे अपने से पहले पहले स्वर्गों की जो उत्कृष्ट स्थिति है कुछ अधिक वही जघन्य है।

नारकाणां च द्वितियादिषु ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार दूसरी आदि पृथिवियो के नारकियों में भी पहले २ के नरकों की जो उत्कृष्ट स्थिति है आगे २ के नरको में वह जघन्य है।

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥

प्रथम नरकभूमि में दश हजार वर्ष की जघन्य स्थिति है।

भवनेषु च ॥ ३७ ॥

भवनवासी देवों की भी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥

व्यंतरों की भी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

परा पल्योपमधिकम् ॥ ३९ ॥

व्यंतरों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है।

ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

ज्योतिष्क देवों की भी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है।

तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

ज्योतिष्क देवो की जघन्य स्थिति १/८ पल्य है।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति आठ सागर है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

—o—

अध्याय ५

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म, अधर्म आकाश और पुद्गल ये अजीव हैं और काय के समान बहुप्रदेशी हैं।

द्रव्याणि ॥ २ ॥

ये द्रव्य कहलाते हैं।

जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीव भी द्रव्य है।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

ये द्रव्य नित्य हैं, नियत हैं और अरूपी हैं।

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

किन्तु पुद्गल द्रव्य रूपी है।

आ आकाशादेक द्रव्याणि ॥ ६ ॥

धर्म अधर्म और आकाश द्रव्य एक २ ही हैं।

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

उक्त तीनों ही द्रव्य क्रिया रहित हैं।

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥

धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं।

आकाशस्यानंताः ॥ ९ ॥

आकाश द्रव्य के अनंत प्रदेश होते हैं।

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥

पुद्गलों के संख्यात असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं।

नाणोः ॥ ११ ॥

परमाणु के प्रदेश नहीं होते।

लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥

ये सब द्रव्य लोका काश मे ही रहते हैं।

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

धर्म और अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश मे व्याप्त है।

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

पुद्गल द्रव्य लोकाकाश के एक दो या अनेक प्रदेशों मे रहते हैं।

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

जीव द्रव्य लोकाकाश के एक दो या अधिक असंख्यातवे भागो में रहते हैं।

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

लोकाकाश के बराबर प्रदेशवाला होने पर भी एक जीव प्रदेशो के संकोच विस्तार के कारण हो दीपक के प्रकाश की तरह लोकाकाश के एक दो और अधिक असंख्येय प्रदेशों में रहता है।

गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

जीव और पुद्गलो के गमन मे सहायक होना धर्म द्रव्य का और ठहरने में सहायक होना अधर्म द्रव्य का उपकार है।

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥

सब द्रव्यो को स्थान देना आकाश द्रव्य का उपकार है।

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

शरीर, बचन, मन और श्वासोच्छ्वास पुद्गल द्रव्य का उपकार है। अर्थात् शरीर वगैरह के द्वारा पुद्गल जीव की मदद करता है।

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

सुख दुःख होना, जीना और मरना भी पुद्गल के उपकार हैं। अर्थात् पुद्गल के निमित्त से ही ये सब होते हैं।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्पर में एक दूसरे की सहायता करना जीवों का उपकार है।

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

वर्तना परिणमन क्रिया छोटा होना और बड़ा होना ये सब काल द्रव्य के उपकार हैं।

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

स्पर्श, रस, गन्ध और रूप वाले पुद्गल होते हैं।

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, भेद, अन्धकार, छाया, धूप और चाँदनी ये सब पुद्गल की ही चीजें हैं।

अणवःस्कंधाश्च ॥ २५ ॥

पुद्गल दो प्रकार के होते हैं—अणु और स्कन्ध।

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ ६ ॥

केवल भेद से केवल संघात से और भेद संघात दोनों से स्कन्ध पैदा होते हैं।

भेदादणुः ॥ २७ ॥

अणु केवल भेद से ही होता है।

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

भेद और संघात दोनों से सूक्ष्म स्कंध दृष्टि गोचर होने योग्य हो जाते हैं।

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

द्रव्य का लक्षण 'सत्' है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

जिसमें एक साथ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति पाई जावे उसे सत् कहते है।

तद्भावाव्ययं नित्यं ॥ ३१ ॥

वस्तु की असलियत का विनाश न होने को नित्य (ध्रुव) कहते हैं।

अर्पितानर्पित सिद्धेः ॥ ३२ ॥

मुख्य और गौण का अपेक्षा मे एक ही वस्तु मे नित्यता और अनित्यता सिद्ध होती है।

स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधः ॥ ३३ ॥

स्निग्ध और रूक्ष गुण के कारण परमाणुओ में बध होता है।

न जघन्यगुणानां ॥ ३४ ॥

किन्तु जघन्य गुण वाले परमाणुओ का बन्ध नहीं होता।

गुणसाम्ये सदृशानां ॥ ३५ ॥

तथा गुणों की समानता होने पर सजातीय परमाणुओ मे भी बन्ध नहीं होता।

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

किन्तु यदि दो अधिक गुणवाले परमाणु हों तो सदृश और विदृश सभी परमाणुओं का परस्पर में बध हो जाता है।

बंधेधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

बंध होने पर अधिक गुणवाला परमाणु कम गुणवाले परमाणु को अपने रूप कर लेता है।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं ॥ ३८ ॥

जिसमें गुण और पर्याय दोनों हो उसे द्रव्य कहते हैं।

कालश्च ॥ ३९ ॥

काल भी द्रव्य है।

सोऽनन्त समयः ॥ ४० ॥

उस काल के अनन्त समय हैं।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

जो द्रव्य मे रहते हों पर स्वयं निर्गुण हो उन्हें गुण कहते है।

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

वस्तु के भाव (वस्तुत्व) को परिणाम कहते है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पचमोऽध्याय ।

अध्याय ६

कायवाङ्मनःकर्मयोगः ॥ १ ॥

शरीर, वचन और मन की क्रिया का योग कहते है।

स आश्रवः ॥ २ ॥

वह योग ही आश्रव है।

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

शुभ योग पुण्य का कारण है और अशुभ योग पाप का कारण है।

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

कषाय सहित जीवों के सांपरायिक (ससार का कारण) आश्रव होता है और कषाय रहित जीवो के ईर्यापथ (संसार का कारण नहीं) आश्रव होता है।

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्च चतुःपञ्च पञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

पांच इन्द्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत और पचीस क्रियाएँ ये सांपरायिक आश्रव के भेद हैं।

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव अधिकरण और शक्ति की विशेषता से आश्रव मे भी विशेषता होती है।

अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

आस्रव के अधिकरण जीव और अजीव होने है। अत. अधिकरण क दो भेद है जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण।

आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

जीवाधिकरण के १०८ भेद हैं:—

सरभ के—३ योग × ४ कषाय × ३ कृत कारित अनु० = ३६
समारंभ के—३ योग × ४ कषाय × ३ कृत कारित अनु० = ३६
आरंभ के—३ योग × ४ कषाय × ३ कृत कारित अनु० = ३६

१०८

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥

अजीवाधिकरण के निर्वर्तनाधिकरण निक्षेपाधिकरण संयोगाधिकरण और निसर्गाधिकरण ये चार भेद है। इनमें भी प्रत्येक के क्रमसे दो चार दो और तीन भेद हैं।

तत्प्रदोषनिन्हवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

ज्ञान और दर्शन के विषय में कलुषित परिणाम रखना, उनको छिपा जाना, उस संबंध में डाह रखना, उनमें विघ्न डालना उनको प्रकट करने से रोक देना उनमें दूषण लगाना इनसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण का आश्रव होता है।

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

दुःख शोक, पश्चात्ताप, रोना और डकराना इन्हें स्वयं करने से, दूसरों मे करने से या स्वयं भी करने और दूसरों में भी करने से असाता-वेदनीय का आश्रव होता हैं।

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिशौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥

जीवदया, व्रतियों पर दया, दान, सराग संयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप इनको अच्छी तरह करना, क्षमा रखना, निर्लोभ रहना इनसे साता वेदनीय का आश्रव होता है।

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥

केवली भगवान, जिनवाणी, मुनिसंघ, धर्म और देवों मे झूठा दोष लगाने से दर्शनमोहनीय का आश्रव होता है।

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

कषाय के उदय से तीव्र परिणाम होने से चारित्रमोहनीय का आश्रव होता है।

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह रखने से नरकायुका आश्रव होता है

मायातैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

माया करने से तिर्यञ्च आयु का आश्रव होता है।

अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥

थोड़ा आरंभ और थोड़ा परिग्रह रखने से मनुष्यआयुका आश्रव होता है।

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

स्वभाव से ही परिणाम कोमल होने से भी मनुष्यायु तथा कहीं देवायु का भी आश्रव होता है।

निः शीलव्रतत्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥

शील और व्रत के बिना चारों ही आयुओं का आश्रव होता है।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसिदैवस्य ॥२०॥

सराग संयम, देशचारित्र, अकाम निर्जरा और अज्ञानतप से देवायु का आश्रव होता है।

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

सम्यग्दर्शन से वैमानिक देवों की आयु का आश्रव होता है।

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥

मनवचन काय को कुटिलता से और दूसरों को धोखा देनेसे अशुभ नाम कर्मका आश्रव होता है।

तद्विपरीत शुभस्य ॥ २३ ॥

मनवचन कायकी सरलता से और किसीको धोखा न देनेसे शुभ नाम कर्मका आश्रव होता है।

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥

निर्मल सम्यक्त्व का पालन. विनय में तत्परता, निर्दोष शीलव्रतों का पालन, सतत ज्ञानका अभ्यास, उदासीन वृत्ति, यथाशक्तित्याग. यथाशक्ति तप, समाधिमरण, वैयावृत्य का आचरण, अर्हत की भक्ति, आचार्य की भक्ति, उपाध्याय की भक्ति और शास्त्र भक्ति करना, छः आवश्यकों को पालना, धर्म प्रभावना करना, सह धर्मियो से स्नेह रखना, इनसे तीर्थकर प्रकृति का आश्रव होता है।

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥२५॥

दूसरे की निन्दा करना और उसके अच्छे गुणों को भी छिपा जाना, अपनी प्रशंसा करना और गुण नहीं होते हुए भी अपने को गुणवान बतलाना इससे नीच गोत्रका आश्रव होता है।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

दूसरे की प्रशंसा करना और उनके गुणों का बखान करना, अपनी निन्दा करना और अपने गुणोंको नहीं कहना, गुणवान पुरुषो की बिनय करना और निरभिमान रहना इनसे उच्चगोत्र का आश्रव होता है

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

दान वगैरह में विघ्न करने से अन्तराय कर्मका आश्रव होता है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।

अध्याय ७

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥

हिंसा, झूठ, चोरी मैथुन और परिग्रह के त्याग को व्रत कहते हैं।

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

उक्त पापों का अंशतः त्याग करना अणुव्रत है और पूर्णतः त्याग करना महाव्रत है।

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ॥ ३ ॥

उन पांचो व्रतोंको दृढ़ करने के लिए प्रत्येक व्रत की पांच पांच भावनाएं होती हैं।

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच॥४॥

मन और वचन का निग्रह करना, देखकर चलना, वस्तुको देखकर रखना और देखकर उठाना तथा देखकर ही खान पान करना, ये अहिंसाव्रत की पांच भावनाएँ हैं।

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥५॥

क्रोध लालच, कायरता और हंसी मजाक का त्याग करना तथा सोच विचार कर बोलना, ये सत्य व्रतकी पांच भावनाएँ हैं।

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च ॥ ६ ॥

सूने घरमें रहना, दूसरों से छोड़े हुए घरमें रहना, दूसरे को वहां बसने से न रोकना, भिक्षा की शुद्धि रखना और सहधर्मी जनोंके साथ कलह न करना, ये अचौर्य व्रतकी पांच भावनाएँ है।

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च । ७ ॥

स्त्रियों में राग पैदा करनेवाली कथाओं को नहीं सुनना, उनके मनोहर अङ्गोंको नहीं निरखना, पहले भोगे हुए विषयभोगोंको याद नहीं करना, गरिष्ट आहार नहीं करना, शृङ्गार नहो करना, ये ब्रह्मचर्य व्रतकी पांच भावनाएँ है।

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

पांचो इन्द्रियों के इष्ट विषयों में राग और अनिष्ट विषयों में द्वेष नहीं करना परिग्रहत्याग व्रत को पांच भावनाएँ हैं।

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥

व्रतों की रक्षा के लिए ऐसा भी सोचना चाहिए कि हिंसादि करने से इस लोक में विनाश और पर लोक में दुःख होता है।

दुःखमेव वा ॥ १० ॥

अथवा हिंसादि पापों को दुःख रूपही समझना चाहिए।

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥

साथ ही सब जीवों में मित्रता, गुणियों के प्रति प्रसन्नता, दुखियों पर दया, और उद्धत मनुष्यों के प्रति तटस्थ वृत्ति रखना चाहिए।

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

तथा उदासीनता और विरक्ति के लिये संसार और शरीर के स्वभाव का भी विचार करना चाहिए।

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

प्रमाद से किसीके प्राणोंका घात करना हिंसा है।

असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥

अप्रिय वचन बोलना झूठ है।

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

प्रमाद पूर्वक विना दी हुई वस्तुका लेना चोरी है।

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

मैथुन करना अब्रह्म है।

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

स्त्री, पुत्र, जमीन, जायदाद वगैरह मे 'यह मेरा है' इस प्रकार के ममत्व को परिग्रह कहते हैं।

निःशल्योव्रती ॥ १८ ॥

माया मिथ्यात्व और निदान से रहित प्राणी ही व्रती होता है।

अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

व्रती दो तरह के होते है एक गृहस्थ और दूसरे मुनि।

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

जो पांचो व्रतो को एक देश से पालन करता है वह गृहस्थ व्रती होता है।

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोपधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ॥ २१ ॥

दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डविरत, ये तीन गुणव्रत और सामायिक प्रोपधोपवास भोगोपभोगपरिमाण तथा अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत इस तरह श्रावक को ये सात शील भी पालन करना चाहिए।

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥

तथा गृहस्थ मरणकाल आनेपर सल्लेखना भी धारण करता है।

शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥

जिन वचनों में संदेह करना, ऐहिक स्वार्थ से धर्म सेवन करना, साधुओं के शरीर में ग्लानि रखना, मिथ्यादृष्टि पुरुषों की मनसे सराहना करना और सामने आनेपर उनके गीतगाना ये सम्यग्दृष्टि के पांच अतीचार (दोष) हैं।

व्रतशीलेषु पञ्चपञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

पांच अणुव्रत और सात शीलव्रतो में से प्रत्येक के पांच पांच अतीचार क्रमसे बतलाते हैं।

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

जीवो को बांधकर रखना, चाबुक आदिसे मारना, नाक आदि छेद देना, बहुत अधिक वजन लादना, उन्हें भूखा प्यासा रखना ये अहिंसाणुव्रतके पांच अतीचार हैं।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥

असत्य उपदेश देना, किसीके रहस्य का उद्घाटन कर देना, जाली लेख लिखना, धरोहर को हड़प जाना, चेष्टाएँ देखकर किसीकी गुप्त बात प्रकट कर देना ये सत्याणु व्रतके पांच अतीचार हैं।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

चोरी के उपाय बताना, चोरीका द्रव्य लेना, राज्य के संकट काल में अराजकता मचाना, तराजू कमती बढ़ती रखना, जाली सिक्के बनाना ये अचौर्याणुव्रत के पांच अतीचार है।

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीड़ा कामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

दूसरों का विवाह कराना, व्यभिचारिणी सधवा स्त्री के यहां जाना, व्यभिचारिणी वेश्या आदिके यहाँ जाना, काम सेवन के अङ्गो के सिवा अन्य अङ्गोसे काम क्रीड़ा करना, कामभोग की तीव्र लालसा रखना ये ब्रह्मचर्य व्रतके पांच अतीचार है।

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः॥२९॥

खेत मकान, चांदी सोना, पशु, अन्न, दासी दास और वस्त्र आदिके नियम का उल्लंघन करना, ये परिग्रहपरिमाण व्रतके पांच अतीचार हैं।

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥

ऊपर नीचे और तिरछे जाने की सीमा का उल्लघनकरना, लोभ में आकर क्षेत्र की सीमा को बढ़ाने की इच्छा रखना और की हुई मर्यादा का भूल जाना ये पांच दिग्व्रत के अतीचार है।

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

सीमा के बाहर स कुछ लाने की आज्ञा देना, मर्यादा से बाहर स्वयं न जाकर और न दूसरे को बुलाकर किन्तु किसी को भेजकर अपना काम करा लेना, मर्यादा से बाहर काम करनेवाले सेवको को लक्ष्य करके खांसना वगैरह, मुझे देखकर नौकर जल्दी काम करेंगे ऐसा सोचकर अपना रूप उन्हें दिखाना, तथा उनको लक्ष्य करके ककर पत्थर फेंकना, ये पाच देशव्रत के अतीचार है।

कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अश्लील मजाक करना, मजाक के साथ शरीर से भी कुचेष्ट करना,

वृथा बकना, निःप्रयोजन कुछ करते रहना, भोगोपभोग के अनावश्यक साधन बढ़ालेना ये अनर्थदण्डव्रत के पांच अतीचार हैं।

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

१मन २ वचन ३ कायको सम्हालकर नही रखना, सामायिकमें उत्साह न रखना, सामायिक करते समय मनको एकाग्र न रखना ये पांच सामायिक शिक्षाव्रत के अतीचार हैं।

अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

बिना देखी और बिना साफ की गई जमीन में मलमूत्र क्षेपण करना, बिना देखे और बिना साफ किये वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण करना, बिना देखी और बिना साफ की गई भूमि मे आसन का बिछाना, आवश्यक कामोंमें उत्साह न रखना और उपवास की विधिको भूल जाना ये पांच प्रोषधोपवासके अतीचार हैं।

सचित्तसंबंधसन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

सचित्त, सचित्त से संबंधित, सचित्त मे मिले हुए, गरिष्ट और अधपके आहार का करना ये पांच भोगोपभोग परिमाण व्रतके अतीचार है।

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमः ॥ ३६ ॥

सचित्त पत्ते वगैरह में रक्खा हुआ, तथा सचित्त पत्ते वगैरह से ढका हुआ अहार मुनिको देना, या दूसरे के आहार को स्वयं उठाकर दे देना, अन्य दाताओं से डाह रखना, मुनियों को अयोग्य कालमें भोजन कराना, ये पांच अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार है।

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥

जीने या मरने की आकांक्षा करना, मित्रों में अनुराग रखना,

पिछले सुखों को याद करना, आगामी विषय भोगों की वांछा करना, ये पांच सल्लेखना व्रतके अतीचार है।

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गोदानम् ॥ ३८ ॥

स्वपर कल्याण के लिए द्रव्य देने को दान कहते हैं।

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

विधि, दानकी वस्तु, दाता और दान लेनेवाले की विशेषता से दान के फल में भी विशेषता होती है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

अध्याय ८

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाबन्धहेतवः ॥ १ ॥

मिथ्यादर्शन, असंयम, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच बन्ध के कारण हैं।

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

जीव सकषाय होनेके कारण जो कर्मोंके योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है उसीका नाम बंध है।

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

बंधके प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबन्ध ये चारभेद हैं।

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥

प्रकृतिबंध के-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ये आठ भेद हैं।

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमम् ॥५॥

उपर्युक्त आठों कर्मों में से प्रत्येक के क्रमसे पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पांच भेद हैं।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥

ज्ञानावरण के—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पांच भेद हैं।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

दर्शनावरण के-चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगद्धि ये नौ भेद हैं।

सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥

वेदनीय के साता और असाता ये दो भेद है।

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडषभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुसकवेदा अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलनविकल्पाश्चैकशः ॥ ९ ॥

मोहनीय के मूलमे दर्शन माहनीय और चरित्र मोहनीय ये दो भेद हैं। चारित्र मोहनीय के अकषायवेदनीय और कषायवेदनीय ये दो भेद हैं। दर्शनमाहनीय के सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये तीन भेद हैं। अकषायवेदनीय के हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुसकवेद ये नौ भेद हैं। कषाय वेदनाय के अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यानावरणी क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरणी क्रोधादि चार और संज्वलन क्रोधादि चार ये १६ भेद हैं। इस तरह मोहनीय के २८ भेद होते हैं।

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

आयु कर्म के नरक आयु, तिर्यंचआयु, मनुष्यआयु और देवायु ये चार भेद हैं।

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

नाम कर्म के—१ गति २ जाति ३ शरीर ४ अङ्गोपाङ्ग ५ निर्माण ६ बंधन ७ संघात ८ संस्थान ९ संहनन १० स्पर्श ११ रस १२ गंध १३ वर्ण १४ आनुपूर्वी १५ अगुरुलघु १६ उपघात १७ परघात १८ आतप १९ उद्योत २० उच्छ्वास २१ विहायोगति २२ प्रत्येकशरीर २३ साधारणशरीर २४ त्रस २५ स्थावर २६ सुभग २७ दुभग २८ सुस्वर २९ दुःस्वर ३० शुभ ३१ अशुभ ३२ सूक्ष्म ३३ बादर ३४ पर्याप्ति ३५ अपर्याप्ति ३६ स्थिर ३७ अस्थिर ३८ आदेय ३९ अनादेय ४० यशःकीर्ति ४१ अयशःकीर्ति ४२ और तीर्थकर ये ब्यालीस भेद हैं।

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

गोत्र कर्म के उच्चगोत्र और नीचगोत्र दो भेद है।

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

अन्तराय के दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय उपभोगान्तराय और वीर्यांतराय ये पांच भेद है।

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परास्थितिः ॥ १४ ॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इनकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है।

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति है।

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

नाम और गोत्रकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति है।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

आयुकर्म की तेतीस सागर उत्कृष्ट स्थिति है।

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

वेदनीय की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त है।

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है।

शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ॥ २० ॥

बाकी के कर्मों की अन्तमुहूर्त जघन्य स्थिति है।

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

कर्मों के परिपाक को अनुभव या अनुभाग कहते है।

स यथानाम ॥ २२ ॥

जिस प्रकृतिका जो नाम है उसीके अनुसार उसका परिपाक होता है।

ततश्चनिर्जरा ॥ २३ ॥

परिपाक हो जाने के बाद वे कर्म आत्मा से अलग हो जाते है।

नामप्रत्ययाःसर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥ २४ ॥

ज्ञानावरण आदि अपने २ नामके कारण, योग विशेष से सब भवों में आनेवाले, सूक्ष्म एक क्षेत्रावगाही अनन्तानन्त कर्मपरमाणु आत्मा के साथ बन्ध को प्राप्त होते इसी को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥

सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतियां हैं।

अतोन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

बाकी की पाप प्रकृतियां हैं।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः।

अध्याय ९

आश्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

आश्रव का रुक जाना संवर है।

सगुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचरित्रैः ॥ २ ॥

वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चरित्र से होता है।

तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

तपमे संवर और निर्जरा दोनों होते है।

सम्यग्योगनिग्रहोगुप्तिः ॥ ४ ॥

अच्छी तरह योगो का निग्रह करना गुप्ति है।

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पांच समितियां हैं।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

उत्तमक्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच,

उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मके सम्यक् उपदेश का चिन्तन करना ये बारह अनुप्रेक्षा या भावना हैं।

मार्गाच्यवननिर्जरार्थंपरिषोढव्याः परीषहाः ॥ ८ ॥

चरित्र से न डिगने के लिए और संचित कर्मों की निर्जरा के लिए परीषहों को सहन करना चाहिए।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥

भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, डांसमच्छर, नग्नता, अरति, स्त्री, चलना, एकासन से बैठना, एक कर्वट से सोना, गाली गलोज, मारपीट, याचना, भोजन का न मिलना, रोग, कांटा आदि चुभजाना, स्नान न करना, आदर सत्कार न होना, विशेष ज्ञान होनेपर भी उसका मद न होना अज्ञान होना, दर्शन को मलिन न होने देना, ये बाईस परीषह हैं।

सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

दशवें, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान मे १४ परीषहें होती है।

एकादश जिने ॥ ११ ॥

केवली के उपचार से ग्यारह परीषह होती हैं।

बादरसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥

नौवें गुणस्थान तक सब परीषह हैं।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

ज्ञानावरण के उदय से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती हैं।

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

दार्शनमोहनीय के उदय से अदर्शन और अन्तराय के उदय से अलाभ परीषह होती है।

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

चरित्र मोहके उदय से नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या आक्रोश, याचना, और सत्कारपुरस्कार परीषहें होती है।

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

वेदनीय के उदय से—क्षुधा तृषा, शीत, उष्ण, दशमशक, चर्या शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श, मल ये ग्यारह परीषहें होती है।

एकादयोभाज्यायुगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ॥ १७ ॥

एक साथ एक जीवमे अधिक से अधिक १९ परीषहें हो सकती हैं।

सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यात-मितिचरित्रम् ॥ १८ ॥

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये पांच चरित्र के भेद हैं।

अनशनावमौदर्यावृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

उपवास करना, भूख से कम खाना, भिक्षा का नियम करना, रस छोड़ देना, एकान्त में सोना बैठना, कायक्लेश करना, ये छः बाह्य तप के भेद हैं।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥

प्रयाश्चित्त,विनय, वैयावृत्य, स्वध्याय, व्युत्सर्ग, (त्याग) और ध्यान ये छः अन्तरङ्ग तप के भेद हैं।

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

इनमें से प्रायश्चित्तके ९ विनय के चार वैयावृत्यके १० स्वध्याय के ५ और व्युत्सर्ग के २ भेद हैं।

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापना ॥ २२ ॥

गुरु के सामने अपने दोष कहना, पश्चात्तापपूर्वक भविष्य के लिए दोषों का प्रतीकार करना, दोषोंका निवेदन और प्रतीकार दोनो करना, अग्राह्य अन्नपानादिक ग्रहण कर लेने पर ग्राह्यका भी त्याग कर देना, कायोत्सर्ग करना, अनशनादिक तप करना, दीक्षा छेद देना, संघ से अलग कर देना, पुन. दीक्षा देना, ये प्रायश्चित्त के ९ भेद हैं।

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

आदर पूर्वक ज्ञानका अभ्यास करना, सम्यक्त्वका निर्दोष पालना चारित्र मे अप्रमत्त रहना और आचार्य के आने पर खड़े हो जाना हाथ जोड़ना ये विनय के चार भेद है।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

आचार्य, उपाध्याय, विशेष तपस्वी, पढ़नेवाले मुनि, रोगी मुनि, वृद्ध मुनियों की शिष्यमंडली, आचार्य की शिष्यमंडली, संघ, बहुत काल के दीक्षित साधु और लोग जिनका विशेष आदर करते हों ऐसे मुनियो की सेवा करना, यह दश प्रकार का वैयावृत्य है।

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशः ॥ २५ ॥

ग्रन्थ पढ़ना, सन्दिग्ध विषय को पूछना, पठित तत्व का बार-बार चिंतवन करना, घोकना और धर्म का उपदेश करना, ये स्वाध्याय तप के पांच भेद हैं।

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

बाह्य परिग्रह का त्याग करना और आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना, ये दो व्युत्सर्ग तप के भेद हैं।

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तमुहुर्तात् ॥ २७ ॥

एक ही पदार्थ में मन का लगादेने का नाम ध्यान है वह उत्तम संहनन धारी के अधिक से अधिक अतमुहूत तक होता है।

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

ध्यान के चार भेद हैं आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान।

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥

अनिष्ट पदार्थ का सयोग होने पर उससे विछोह होने के लिए सदा चिन्तित रहना पहला आर्तध्यान है।

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

इष्ट पदार्थ का वियोग होने पर उसके सयोग के लिए सदा चिन्तित रहना दूसरा आर्तध्यान है।

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

दुःख के प्रतीकार के लिए सदा चिन्तित रहना तीसरा आर्तध्यान है।

निदानं च ॥ ३३ ॥

आगामी विषय भोगों के लिए चिन्तित रहना चौथा आर्तध्यान है।

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥

वह आर्तध्यान पहले के चार तथा चौथे पांचवें और छठे गुणस्थान मे होता है। किन्तु छठे गुणस्थान में निदान नाम का आर्तध्यान नहीं होता।

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥

हिसा, झूठ, चोरी और और विषयसामग्री की रक्षा के उपाय सोचते रहना तथा उनमें आनन्द मानना रौद्रध्यान है। यह रौद्रध्यान पहले से चौथे और पांचवे गुणस्थान मं होता है

आज्ञापायविपाकविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

आज्ञाविचय (भगवान की आज्ञा का संसार में प्रचार कैसे हो ऐसा विचारना) अपायविचय (सन्मार्ग से भ्रष्ट हुए प्राणियोका कैसे उद्धार हो ऐसे विचारना) विपाकविचय (कर्मों के फल का विचार करना) और संस्थानविचय (लोक के स्वरूप का चिन्तन करना) ये चार धर्मध्यान के भेद हैं।

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

पृथक्त्ववितर्क और एकत्व वितर्क नामके शुक्लध्यान तथा धर्मध्यान श्रुतकेवली के होते हैं।

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामके शुक्लध्यान केवली भगवान के होते हैं।

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रिया-निवृत्ति ये चार शुक्लध्यानके भेद हैं।

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

पृथक्त्ववितर्क तीन योगवालेके, एकत्ववितर्क तीनों मे से किसी एक योगवालेके, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति काययोगीके, व्युपरतक्रिया निवृत्ति अयोगीके होता है।

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

पहलेके दो शुक्लध्यान श्रुतकेवली के होते हैं तथा वितर्क और वीचार सहित हैं।

अवीचारं द्वितीयं ॥ ४२ ॥

दूसरा शुक्लध्यान वीचार रहित है।

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं।

वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

अर्थके बदलनेको, व्यंजनके बदलनेको और योगके बदलनेको वीचार कहते हैं।

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

सम्यग्दृष्टि, श्रावक, प्रमत्तविरत, अनन्तानुबंधीका विसंयोजक, दर्शनमोहका क्षपक, उपशमश्रेणीवाला, उपशान्तमोही, क्षपकश्रेणीवाला, क्षीणमोही और अरहंत इनके उत्तरोत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

पुलाकबकुशकुशीलनिर्गन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥

पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और केवली ये पाँच प्रकारके निर्ग्रन्थ हैं।

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इन पुलाकादि निर्ग्रन्थोंका संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उत्पत्तिस्थान और संयमके स्थान इन आठ अनुयोगोंसे व्याख्यान करना चाहिए।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः।

—०—

अध्याय १०

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

मोहके क्षयसे और ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तरायके क्षय से केवलज्ञान होता है।

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

बन्धके कारणोंका अभाव और निर्जराके द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंका आत्मासे अलग हो जाना मोक्ष है।

औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

मोक्षमें औपशमिक आदि भाव तथा भव्यत्व भावका भी विनाश हो जाता है।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

किन्तु केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व और सिद्धत्व गुणका विनाश नहीं होता।

तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥

कर्मोंसे मुक्त होनेके वाद आत्मा लोकशिखर तक ऊपरको जाता है।

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

ऊपर जानेका कारण यह है कि एक तो पहलेका संस्कार रहता है, दूसरे कर्मोंका भार नहीं रहता, तीसरे बन्धनसे मुक्त हो जाता है, तथा चौथे उसका स्वभाव ही ऊपरको जानेका है।

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखा-वच्च ॥ ७ ॥

दृष्टांतके लिये जैसे कुम्हारका चाक पूर्व संस्कारसे घूमता है, तूबी मिट्टीके गल जानेसे पानीके ऊपर आजाती है, घुडोके चटकते ही एरण्डका बीज उपर उछलता हैं अथवा अग्निकी लपट स्वभाव से ही ऊपर जाती है। वैसे ही मुक्त जीव भी ऊपरको जाता है।

धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

लोकके शिखर तक ही जानेका कारण यह है कि आगे गतिका सहायक धर्मास्तिकाय द्रव्य नहीं है।

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ८ ॥

क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चरित्र, प्रत्येक बुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगद्वारो से सिद्धों मे भेद कर लेना चाहिए।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः।

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥

तत्वार्थसूत्रके व्याख्यानमें अगर मुझसे अक्षर मात्रा पद या स्वर की भूल हुई हो, व्यञ्जन सन्धि या रेफ के बिना कुछ लिखा गया हो तो सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करें, क्योंकि शास्त्ररूपी समुद्रमें कौन नही गोते खा जाता ।

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥ २ ॥

बड़े २ ऋषियों का कहना है कि इस समग्र तत्त्वार्थ सूत्रका पाठ करनेसे एक उपवासका फल होता है ।

तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥ ३ ॥

मै गृद्धके पंखोकी पिच्छी धारण करने वाले तत्वार्थसूत्रके कर्ता आचार्य शिरोमणि श्री उमास्वामीको नमस्कार करता हूं ।

—०—